पृष्ठ-संख्या १३८ से १५४

सप्तम अध्याय

सा हि त्यि क चे त ना

-- साहित्यिक चेतना - स्वरूप

-- आधुनिक काव्य में साहित्यिक चेतना

-- दिनकर का साहित्यिक दृष्टिकोण

-- दिनकर की साहित्यिक चेतना

-- दिनकर के काव्य-तत्व संबंधी

प्रयोजन संबंध

छंद संबंधी

काव्य भाषा संबंधी विचार

नि ष्क र्ष

सप्तम अध्याय

साहित्यिक चेतना

साहित्यिक चेतना - स्वरूप :

कवि समाज का एक महत्त्वपूर्ण घटक है । कवि की पुकार समाज की पुकार होती है । कवि के साहित्य में समाज का ही प्रतिबिंब रहता है । समाज का यथातथ्य चित्रण करके वह समाज के गुणदोषों को यथार्थ रूप में प्रकट करता है । सामाजिक समस्या का हल खोजने की कोशिश करता है । कवि या साहित्यकार एक असाधारण व्यक्ति होता है । एक साहित्यकार के लिए लेखनी चलाना उतना कठिन है जितना एक वीर के लिए तलवार चलाना होता है । फर्क इतना है कि तलवार विध्वंसात्मक होती है और लेखनी सृजनात्मक । डॉ. नगेंद्र ने कहा है-- '' साहित्य का जीवन से दुहरा संबंध है । एक क्रिया रूप में दूसरा प्रतिक्रिया रूप में । क्रिया रूप में जीवन की अभिव्यक्ति है, और प्रतिक्रिया रूप में निर्माता और पोषक । ''[१]

कवि या साहित्यकार जो साहित्य निर्माण करता है वह जीवन की अभिव्यक्ति है । इसमें निरी अभिव्यक्ति नहीं करना वरन् मनुष्य के भावजगत का परिष्कार करके एक ऐसा आवरण प्रस्तुत करता है कि उसकी रचना हमारे आनंद और मंगल का कारण बन जाती है । साहित्य मनुष्य के भाव जगत का संस्कार करके उसे ऐसी निर्मल सात्विकता प्रदान करता है, जिससे सभी दुष्प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । ऐसा साहित्य साहित्यकार की साधना है, साधना का फल है। साहित्य दर्पणकार के शब्दों में '' एक तो मनुष्य-जन्म की प्राप्ति दुर्लभ है। दूसरे उसमें विद्या का होना दुर्लभ है । कविता करना उसमें और भी दुर्लभ है तथा उसमें शक्ति होना तो अत्यंत दुर्लभ है । ''[२]

---

१. विचार और विमर्श - डॉ. नगेंद्र, पृ.२५ ।
२. वृहद् साहित्यक निबंध, डॉ. यश गुलाटी, पृ.१० ।

यह ऐसा अमृत है कि उसे जो पाता है, वही धन्य हो जाता है, अमर हो जाता है ।

सत् साहित्य में देश, जाति, धर्म, संप्रदाय , राष्ट्र सबकी सीमाएँ टूट जाती हैं । वह सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा विश्वजनीन बन जाता है । यही साहित्यकार की सब से बडी उपलब्धि है । कला और साहित्य का ध्येय आदि-काल से मानव हित का संपादन रहा है । साहित्यकार चाहे जीवन से दूर भागकर कल्पना लोक में विहार करे , किंतु वह भौतिक आवश्यकताओं का तिरस्कार नहीं कर सकता ।

सत् साहित्य जीवन को कदापि अवहेलना नहीं कर सकता । जीवन का निर्विवाद चरम लक्ष्य है शिवत्व और आनंद की प्राप्ति । यदि साहित्य, जीवन के उत्थान की प्रेरणा प्रदान न कर सका, जीवन के प्रति आस्था, विश्वास, आशा उत्पन्न न कर सका, मनुष्य को पुण्यात्मा और सुखी बनाने में योगदान न कर सका तो साहित्य कहलाने का अधिकारी न होगा ।

डॉ. शिवप्रसाद गोयल - '' साहित्य सत्य की कितनी ही सुंदर अनुभूति या अभिव्यक्ति क्यों न हो जब तक उसमें शिवं का योग न होगा तब तक वह गौरवान्वित न हो सकेगा । जगत को उसके समष्टि रूप में देखने के कारण साहित्य-कार भूत और वर्तमान का चितेरा तथा भविष्य का सृष्टा बन जाता है । ''[3]

साहित्य केवल मनोरंजन का साधन मात्र नहीं है । यह आवश्यक है कि वह सत्यं और शिवं की रक्षा करते हुए भी समाज की रणभेरी बने, उदात्त मानव धर्म की स्थापना करनेवाला बने तथा शाश्वत और चिरंतन आदर्श जीवन मूल्यों की

---

३. काव्य और लोकहित - डॉ. शिवप्रसाद गोयल, सप्तसिंध, पृ.३७ ।

रक्षा करनेवालों का प्रेरणा स्रोत हो । वह प्रचार का कोरा साधन न हो । रोमारोलाँ का कथन है कि जीवन के अखंड संघर्ष में लडनेवाले सर्वश्रेष्ठ सैनिक साहित्यकार होते हैं । '' इस प्रकार साहित्य के द्वारा समाज का यथार्थ चित्रण करके उसे आदर्शोन्मुख करने का प्रयास ही साहित्यिक चेतना है ।

आधुनिक काव्य में साहित्यिक चेतना :

सृष्टि का प्रत्येक तत्त्व परिवर्तनशील है । उसी प्रकार साहित्य भी देश-काल, परिस्थिति तथा वातावरण के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। साहित्य में उस युग की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सभी बातों का चित्रण रहता है ।

आदिकाल में वातावरण साहित्यिक विकास के लिए पोषक नहीं था । उस पतनकाल में दो प्रकार के काव्य निर्माण हुए । (१) वीर काव्य (२) शृंगारिक काव्य । चुमान रासो, बिसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो आदि काव्य वीर रस से परिपूर्ण थे । दूसरी ओर विद्यापति का काव्य शृंगार से ओतप्रोत था । युद्ध से संत्रस्त जनता को भगवत् भक्ति की ओर लगाने का प्रयास संत कवियों ने किया । वही भक्तिकाल बन गया ।

रीतिकाल का साहित्य सामान्य जनों के लिए नहीं रचा गया । उसका निर्माण राजा महाराजाओं के मनोरंजन के लिए हुआ । कलापक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया गया । रस, अलंकार, नायिकाभेद, ध्वनि आदि काव्य में अनिवार्य बन गए । सारा काव्य शृंगार रस में डूब गया था । कवि अपने सामाजिक दायित्व के प्रति अनभिज्ञ था । शृंगारिक वर्णन में नारी का नख-शिख वर्णन, मांसलता का चित्रण हुआ । इस विलासिता ने साहित्य का बाह्य शृंगार किया। इस प्रकार रीतिकालीन साहित्यिक चेतना भावपक्ष की अपेक्षा कला पक्ष को

अधिक महत्त्व देती थी ।

आधुनिक काल के भारतेंदु युग से साहित्यिक चेतना में नया मोड पैदा हुआ। साहित्य में वास्तविकता के चित्रण की ओर अधिक ध्यान दिया गया । भारतेंदु ने यथार्थपरक साहित्य की नींव रखी । द्विवेदी युग में भी जीवन की वास्तविकताओं से साहित्य का संबंध टूटने नहीं पाया । छायावादी युग का साहित्य रोमांटिक , किशोर कल्पना के पर लगाकर स्वप्निल सौंदर्य में विहार कर रहा था। धरती की वास्तविकता को भूल गया था । इस पलायनशील प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रगतिवादी युग खडा हुआ । शून्य में उडनेवाले साहित्य के पैर पृथ्वी पर जम गए ।

कलापक्ष में छंदों के बंधन टूट गए और मुक्त छंद का निर्माण हुआ । अलंकार अनिवार्य न होकर भावों को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त करने का साधन बन गया । बोलचाल की भाषा का प्रयोग होने लगा । लोकोक्ति , मुहावरों का या विदेशी शब्दों का प्रयोग होने लगा । इस प्रकार कलापक्ष में साहित्यिक चेतना ने नया मोड लिया ।

दिनकर का साहित्यिक दृष्टिकोण :

दिनकर का साहित्यिक जीवन अत्यंत सफल रहा है । वे हिंदी के प्रतिभासंपन्न और भाग्यशाली कवि हैं । दिनकर का कलाकार ईमानदार है । उन्हें जो सत्य एवं उचित प्रतीत हुआ उसी को उन्होंने जनता के सम्मुख रखा । दिनकर साहित्यिक क्षेत्र में कबीर और तुलसी से सर्वाधिक प्रभावित थे । चक्रवाल की भूमिका में उन्होंने लिखा है । - '' जहाँ तक कविता का संबंध है, मैंने प्रेमपूर्वक पहले पहल तुलसी कृत रामायण ही पढी थी । दिनकर के संस्कार तुलसी और कबीर की सहज गंभीरता तथा प्रसाद के आदी थे ।

साहित्यकार के संबंध में कवि की स्पष्ट धारणा है कि '' अगर वह प्रचारक न होकर शुद्ध कलाकार है तो जीवन को वह दर्शन, राजनीति अथवा विज्ञान चाहे जिस किसी भी दृष्टि से देखे उसकी अनुभूति तथा उसके उद्गार कलाकार के उद्गार होंगे । साहित्य का उसके हाथों कोई अपमान नहीं हो सकता। रेशमी बालों, पत्थरों और फूलों की सुंदरता की अनुभूति तो सच्ची किंतु पेट की पीडा की अनुभूति प्रधान समझी जाए यह ईश्वर के देखने योग्य दृश्य है । ''[४] दिनकर का जन्म कृषक परिवार में हुआ । उस युग में किसान राष्ट्रीय दैन्य का प्रतीक था । उस समय की उसकी दयनीयता पर तरस आकर राष्ट्रीयता उसके द्वार खटखटाने लगी और साहित्य में विज्ञान की प्रतिष्ठा हुई । रूस की लाल क्रांति से प्रभावित भारतीय समाज के वर्ग संघर्ष में कृषक की स्थिति महत्त्व-पूर्ण हो गई । दिनकर के आरंभिक जीवन से ही कृषक की समस्याएँ तथा कृषक जीवन के आर्थिक एवं सामाजिक यथार्थ कवि के व्यक्तित्व को आंदोलित करने लगे थे । फलस्वरूप उनके साहित्य में किसान की समस्याओं को प्राधान्य मिल गया।

दिनकर साहित्य में अनुभूति को महत्त्व देते हैं । अनुभूति को एक साहित्य-कार की शक्ति मानते हुए कहते हैं-- '' तीव्र अनुभूति, मार्मिक भावुकता और सच्ची प्रसन्नता से लिखी हुई काल्पनिक कथाएँ अत्यंत स्वाभाविक हैं क्योंकि हम उनमें जलते जीवन का ताप पाते हैं । साहित्य की सब से बडी प्रचंड और अद्भुत शक्ति अनुभूति है । जिसके आलोक में पडकर वस्तु आदर्श और आदर्श सत्य हो जाता है । ''[५]

कवि की दृष्टि में आदर्शहीन साहित्य अल्पायु होता है । '' कलाकारों में श्रेष्ठ तो नहीं गिना जाएगा जो जीवन के किसी महान पर महान रूप से

---

४. मिट्टी की ओर - दिनकर, पृ.१६१ ।

५. रसवंती - दिनकर , च. सं. भूमिका, पृ. ३ ।

कला का रंग छिडक सके । सच तो यह है कि ऊँची कला कोशिश करने पर भी अपने को नीति और उद्देश्य के संसर्ग से नहीं बचा सकती । क्योंकि नीति और लक्ष्य जीवन के प्रहरी हैं । और कला जीवन का अनुसरण किए बिना जी नहीं सकती । ''[६]

कला पक्ष :

काव्य के तत्त्व संबंधी दिनकर के विचार -

(१) भावना - काव्य के तीन तत्त्व हैं । भावना, कल्पना और बुद्धि । इन तीन तत्त्वों से संबंधित विचार इस प्रकार हैं । दिनकर भावना को साहित्य की आधारशिला मानते हैं , वे कहते हैं '' साहित्य की सारी पूंजी भावों को लेकर है । यदि भावुकता का सरोवर सूख गया तो कवि और पाठक दोनों साहित्य के लिए बेकार हैं । ''[७] भावुकता के बिना कोई भी व्यक्ति कवि नहीं बन सकता। भावुकता के बिना काव्य नीरस बन जाता है । वह हृदय से निकलकर हृदय पर चोट नहीं करता । दिनकर कहते हैं '' जिस दिन कवि की भावना अंधी हो जाएगी उस दिन हिमालय से लेकर थार तक, सागर से लेकर पुष्प तक उसकी प्रेरणा को कोई भी जगा नहीं सकता । ''[८]

कवि भावना को हमारी चेतना का एक अंश समझाते हैं । मानव मानव को एक सूत्र में बाँधकर रखने के लिए भावना का होना आवश्यक है । साहित्य , कला और भावना का व्याख्यान करता है । और उसके द्वारा हमारी चेतना का परिष्कार करता है ।

---

६. मिट्टी की ओर - दिनकर, पृ. ६० ।
७. चक्रवाल - दिनकर , भूमिका, - ग ।
८. मिट्टी की ओर , दिनकर , पृ.११२ ।

(२) कल्पना - कवि काल्पनिक जगत में विहार करनेवाला नहीं है । वह अपने काव्य में सब से अधिक महत्त्व कल्पना को ही नहीं देते । कवि कल्पना को वायवी लोक की वस्तु समझाते हैं । कवि वर्तमान का यथार्थ चित्रण करके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करते हैं जो कल्पना सत्य की नींव पर खडी है वह कभी ढह नहीं सकती । कवि ऐसी ही कल्पना को ग्राह्य समझाते हैं । कवि का कहना है, '' वैज्ञानिक सत्य के अलावा भी एक और सत्य है जिसे विज्ञान नहीं, कला जानती है, जिसे बुद्धि नहीं कल्पना समझाती है ।''[१]

कवि कल्पना का उपयोग उन चीजों को देखने के लिए करता है जिन्हें हमारी बाहरी आँखें देख नहीं सकतीं ।

(३) बुद्धि - दिनकर काव्य में बुद्धि की महत्ता को स्वीकार करते हैं । क्योंकि बुद्धि तर्क का अनुगमन करती है । अंधविश्वासों का खंडन करती है । बुद्धि द्वारा ही नैतिकता के नियम निर्धारित होते हैं । आजकल बुद्धि और भावना का निरर्थक संघर्ष चल रहा है । कवि किसी एक पक्ष को न उठाकर दोनों के संतुलन को आवश्यक समझाते हैं । काव्य में कभी बुद्धि को प्रधानता दी जाती है । कभी भावना को । दिनकर कहते हैं-- '' जीवन न केवल भावना है न बुद्धि । आदर्श मनुष्य वह है जिसकी बुद्धि और भावना दोनों संतुलित हों । ''

बुद्धि की सत्ता को दिनकर सीमित रखते हैं । जहाँ तक हमारी दृष्टि की पहुँच है वहीं तक बुद्धि की है । दृष्टि के उस पार जो अगम है वहाँ तक बुद्धि नहीं जा सकती । इस काम में भावना मार्ग प्रदर्शन करती है । दिनकर बुद्धि के महत्त्व को साहित्य में स्वीकार करते हैं । पर उन्होंने स्पष्ट कहा है कि साहित्य विज्ञान नहीं है । बुद्धि का निरंकुश शासन उन्हें मान्य नहीं है । काव्य में गांभीर्य के समावेश के लिए बुद्धि आवश्यक मानते हैं । लेकिन बुद्धि के कारण काव्य को विज्ञान बनाने के पक्ष में वे नहीं हैं ।

---

१. काव्य की भूमिका - दिनकर, पृ. ८६ ।

दिनकर के तत्त्वों का काम में प्रकटीकरण :

भाव प्रेरित रचनाएँ -

रेणुका , रसवंती, द्वंद्वगीत, हुंकार आदि भाव प्रेरित रचनाएँ हैं । रश्मि-रथी, कुरुक्षेत्र, सामधेनी, नीलकुसुम , धूप और धुँआ, परशुराम की प्रतिज्ञा आदि रचनाएँ विचार प्रधान होने के बावजूद भी उनके मूल में वही भाव है, जो प्रारंभिक रचनाओं में पाया जाता है । सावित्री सिन्हा के अनुसार दिनकर एक भाव प्रवण कवि हैं, विचारक नहीं हैं ।

कल्पना प्रेरित रचनाएँ -

दिनकर की कल्पना दृष्य और अदृश्य के बीच सेतु का कार्य करती है । वर्तमान की वास्तविकता को बताकर कवि उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करता है । प्रलोक योजना में दिनकर की कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है । उर्वशी और रसवंती के प्रतीक विधान में कोमल और मधुर बिंबों की सृष्टि की है । कल्पना के कोमल पर लगाकर उडते हुए कवि धरती के यथार्थ को नहीं भूले ।

बुद्धि प्रेरित रचनाएँ -

दिनकर का महाकाव्य कुरुक्षेत्र एक विचारप्रधान काव्य है । इसमें आधुनिक जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण संदर्भों का विवेचन बौद्धिक धरातल पर किया है । ' सामधेनी ' , ' बापू ' , ' नील कमल ' में कवि के भाव विचार का अनुसरण करते हैं । उर्वशी में काम की समस्या का समाधान बुद्धिवादी है । नीलकुसुम , सीपी और शंख, कोयला और कवित्व में आधुनिक बौद्धिक स्तर की प्रधानता है । संक्षेप में कवि होने के साथ दिनकर एक अच्छे विचारक भी हैं।

काव्य के प्रयोजन संबंधी दिनकर के विचार :

दिनकर ने कलाकार को एक सर्जक माना है । कलाकार अपने समय की उपज होता है ।भारतीय काव्यशास्त्र संबंधी विवेचन करनेवाले विद्वानों में दिनकर , मम्मट से प्रभावित रहे । दिनकर के अनुसार कविता से मनुष्य यश, ज्ञान, शक्ति तथा शिक्षा हासिल कर लेता है । काव्य प्रयोजन में दिनकर आनंद को सर्वप्रथम स्थान देते हैं । क्योंकि कला से नि:सृत आनंद कलाकार की प्रेरक शक्ति होती है । काव्य के दो प्रयोजन अभिव्यंजन और सौंदर्यबोध पर दिनकर अधिक बल देते हैं । काल्पनिक जगत के पीछे लगने के बजाय दिनकर यथार्थ जीवन का चित्रण महत्त्वपूर्ण समझाते हैं ।

दिनकर के इस संबंधी विचार -- '' किसी भी कलाकार की सफलता ही इस बात पर निर्भर होती है कि उसने जीवन की गहराइयों में कितना प्रवेश किया है । जीवन की कितनी अनुभूतियाँ प्राप्त की हैं । और जीवन को कितनी निकटता से देखा है । ''[१०]

जीवन की समस्याओं का चित्रण करके उसका हल सुझानेवाला कलाकार ही श्रेष्ठ होता है । दिनकर कहते हैं-- '' कला की ऊँची कृतियाँ केवल जीवन की समीक्षा नहीं करती, वरन् उसकी समस्याओं का विधान, उसके अर्थों की टीका और कभी कभी उसका हल भी निकालती हैं । ''[११]

यथार्थ जीवन की वास्तविकता से कला का अटूट नाता है । दिनकर कहते हैं -- '' चाहे हम आकाश में उडते हों या धरती पर घूम रहे हों, लेकिन हमारी आँखें उसी मनुष्य पर केंद्रित रखनी चाहिए । ''[१२]

---

१०. मिट्टी की ओर - दिनकर , पृ. ४४ ।
११. वही, पृ. ५६ ।
१२. वही, पृ. ५६ ।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

यथार्थ जीवन का चित्रण करके उसे आदर्श की ओर उन्मुख करने में ही कला की सार्थकता है । कला ऐसी हो जो मानवता के विकास में पोषक बन सके। दिनकर के अनुसार सफल कवि दृश्य और अदृश्य के बीच वह सेतु है जो मानवता को देवत्व की ओर ले जाता है । यही मानवता लोकहित की भावना को जन्म देती है । ''[१३]

इस प्रकार काव्य के द्वारा सामाजिक परिवर्तन करके उसे विकासोन्मुख करने का कार्य कवि करता है । इसलिए दिनकर कहते हैं-- '' मेरी दृढ धारणा है कि कविता व्यक्ति द्वारा संपादित सामाजिक कार्य है । ''[१४]

इस प्रकार काव्य प्रयोजन संबंधी दिनकर का मतप्रदर्शन देखने के उपरांत यह स्पष्ट होता है कि दिनकर के विचार भारतीय परंपरा से जुडे हुए हैं । साथ में पाश्चात्य परंपरा के अरनाल्ड और टॉलस्टॉय से भी उन्होंने प्रभाव ग्रहण किया है ।

दिनकर-काव्य में , काव्य-प्रयोजनों का प्रकटीकरण :

दिनकर साहित्य में काल्पनिकता, भावुकता को स्थान न देकर यथार्थ चित्रण की ओर अधिक ध्यान देते हैं । मानव मात्र के कल्याण में ही साहित्य की परिपूर्ति समझाते हैं । रेणुका से लेकर परशुराम की प्रतीक्षा तक उनका स्वर मानवतावादी रहा । मानव के भीतर छिपी हुई शक्ति को प्रकाश में लाने का प्रयास उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से किया । काव्य प्रयोजन में दिनकर आनंद को विशेष स्थान देते हैं । इस आनंद का पूर्णरूप से विकास उर्वशी में पाया जाता है । दिनकर ने स्वयं इस बात का स्वीकार करते हुए कहा है -- '' उर्वशी में

---

१३. मिट्टी की ओर - दिनकर , पृ. ४२।

१४. रश्मिलोक - दिनकर, पृ. १- २ ।

पुरुरवा उर्वशी का आख्यान भावना, हृदय , कला और निरुद्देश्य आनंद की महिमा का आख्यान है । ''[१५]

उनकी रचनाएँ एक ओर वीर , शृंगार , करुण और शांत रसों से युक्त है । दूसरी ओर दिनकर विज्ञान और अध्यात्म , व्यष्टि - समष्टि तथा आस्था और अनास्था के समन्वयात्मक दृष्टिकोण के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने यथार्थ के धरातल पर अवस्थित रहकर आदर्श की ओर बढने का उपक्रम किया है । उन्होंने साहित्य में स्थूल और सूक्ष्म दोनों का चित्रण किया है ।

दिनकर के छंद संबंधी विचार :

शास्त्रीय परंपरागत नियमों को दिनकर ने स्वीकृति दी है । दिनकर प्रगतिवादी कवि हैं । लेकिन छंद को पूरी तरह छोडने के पक्ष में नहीं हैं।दिनकर के छंद संबंधी विचार विशाल हैं । उन्होंने छंद की संकुचित व्याख्या नहीं की । दिनकर का विश्वास है कि समस्त सृष्टि में एक छंद है । दिनकर कहते हैं --''छंद स्पंदन, समग्र सृष्टि में व्याप्त है । कला ही नहीं जीवन की प्रत्येक सिरा में यह स्पंदन एक नियम से चल रहा है । सूर्य , चंद्र, ग्रह , मंडल की प्रगति मात्र में लक्ष्य है । जो समय के ताल पर गति लेती हुई अपना काम कर रही है ।''[१६]

दिनकर के अनुसार काव्य में छंद अनिवार्य है । क्योंकि छंद पाठक के आकर्षण को बनाए रखता है । पाठक के भीतर की जिज्ञासा और कुतूहल को कायम रखता है । इसलिए दिनकर छंद को काव्य का सहायक उपकरण न मानकर काव्यकला में अनिवार्य मानते हैं । उसे स्वाभाविक मार्ग समझाते हैं । दिनकर कहते हैं --

---

१५. उर्वशी - दिनकर , भूमिका, ग ।
१६. मिट्टी की ओर - दिनकर, पृ.१४ ।

'' मेरे जानते छंद काव्यकला का सहायक नहीं, बल्कि उसका स्वाभाविक मार्ग है । ''[१७]

हर भाव की अभिव्यक्ति के लिए अलग अलग छंद की जरूरत होती है । कोमल भावों के लिए अलग छंद और कठोर भावों के लिए अलग होते हैं । उसी प्रकार अलग अलग कवियों की अलग अलग मनोदशाओं के अनुसार भी छंदों का जन्म और विकास होता है । परिणाम यह होता है कि एक ही छंद अलग अलग कवियों द्वारा किंचित अलग अलग ढंग से रूपायित होता है । इस दृष्टि से छायावाद युग महत्वपूर्ण है । इस युग में छंदों के क्षेत्र में एक बडी क्रांति हुई ।

दिनकर यह नहीं चाहते हैं कि नए कवि पुरानी चीजों को उसी रूप में स्वीकार कर ले । यह भी उतना ही सत्य है कि प्राचीन साहित्य की सभी चीजें नए साहित्यिकों के विकास में बाधक नहीं होंगी । दिनकर के अनुसार समय के साथ परिवर्तन आवश्यक है उनका कहना है कि यदि पुराने छंद कवि की मनोदशा के अनुकूल नहीं पडते तो वह अपने अनुकूल छंद का निर्माण कर सकता है । जब कवि अपने भावों के तूफान को छंदों में बाँधकर नहीं ले जा सकता तब उस हालत में मुक्त छंद की निर्मिति होती है । कवि अपने अनुकूल छंद का निर्माण करने के लिए स्वतंत्र है । कवि नए छंद का स्वागत करते हुए कहता है - नए छंदों द्वारा युग की नई चेतना का आभास मिलता है, नए छंदों से नई भावदशा पकडी जाती है । नए छंदों से काव्य को नई आयु प्राप्त होती है।

दिनकर की साहित्यिक चेतना छंद को काव्य के लिए आवश्यक मानती है पर यदि एक युग के छंद दूसरे युग की भावदशा को पकडने में समर्थ नहीं हैं तो

---

१७. मिट्टी की ओर - दिनकर, पृ.११३ ।

उनका त्याग ही श्रेयस्कर है । दिनकर रोमांटिक युग के छंद आज के भावों को वहन करने में उपयुक्त नहीं मानते । उनके अनुसार युग और भाव के अनुकूल छंदों को नहीं ग्रहण करने से अभिव्यक्ति बोझिल होती है । उसमें प्रभावोत्पादकता उत्पन्न नहीं होती । इस प्रकार दिनकर की साहित्यिक चेतना युग के अनुसार छंद परिवर्तन आवश्यक मानती है ।

दिनकर के छंद प्रयोग :

दिनकर की आरंभिक रचनाएँ भावाकुलता पर आधारित हैं । इन रचनाओं में दिनकर ने प्रचलित छंद वर्णिक और मात्रिक को ग्रहण किया है । एकाध जगह भिन्न छंद भी मिलते हैं । दिनकर ने कोमल - मधुर तथा करुण भावों की अभिव्यक्ति '' सार शृंगार एवं आँसू जैसे छंदों में की है । उसी प्रकार उल्लास, त्याग और राष्ट्रीय भावों के लिए दिकपाल , मात्रिक छंद का प्रयोग किया है। आनंद , आशा और उत्साहवाले स्थलों पर उन्होंने कवित्त और सवैया जैसे वर्णिक छंदों को अपनाया है । उन्होंने उल्लास और जागरण के लिए छंद को अपनाया है । उन्होंने कुछ छंदों में प्रसाद की तरह अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।

दिनकर ने छंदशास्त्र का अध्ययन किया किंतु परंपरागत शास्त्रीय छंदों के घेरे में स्वयं को आबद्ध नहीं किया । नए कवि ने तुक और छंदों का बंधन अस्वीकार किया है । तथा अतुकांत छंदों को अपनाया है जिससे विषय अधिक स्पष्ट हो सके । दिनकर ने अतुकांत छंदों का प्रयोग किया है । ' कुरुक्षेत्र ' से लेकर उर्वशी तक, नील कुसुम व कोयला और कवित्व जैसी प्रयोगवादी रचनाओं तक अतुकांत छंद समभाव से प्रतिष्ठित हैं ।

दिनकर के काव्यभाषा संबंधी विचार :

भाषा भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है ।

प्रत्येक भाव को अनुरूप शब्दों में प्रकट करने के लिए कवि का भाषा पर प्रभुत्व होना आवश्यक है । कविता की सारी शक्ति भाषा की नींव पर खड़ी रहती है । '' दिनकर काव्य रचना की असली कुंजी भाषा को मानते हैं । काव्य - भाषा ऐसी हो जो भाव , विचार , अनुभूति का अनुसरण कर सके । दिनकर ने काव्यभाषा में व्यवहार भाषा का समावेश उचित समझा है । उनके अनुसार काव्यभाषा और व्यवहार भाषा के पार्थक्य को पूरी तरह मिटाना संभव नहीं है । काव्यभाषा और व्यवहार भाषा की एकरूपता को वे साहित्य के स्वास्थ्य की निशानी मानते हैं । दिनकर ने दोनों प्रकार की भाषाओं को सैद्धांतिक पार्थक्य को स्वीकार करते हुए भी उनकी पारस्परिक समीपता पर बल दिया है । काव्यभाषा के स्वरूप और उनकी विशेषताओं पर विचार करते हुए उन्होंने शब्दचयन, सांकेतिकता, प्रेषणीयता और ध्वन्यात्मकता को महत्त्व दिया है । दिनकर के अनुसार सफल बिंब योजना काव्य के लिए आवश्यक है । काव्य में विशेषणों के प्रयोग पर दिनकर कवि की श्रेष्ठता निर्भर समझते हैं । साथ में काव्य में कल्पना और रागात्मकता को उन्होंने आवश्यक माना है। दिनकर के अनुसार काव्य में ध्वनि का महत्त्व निर्विवाद है । इस प्रकार काव्य-भाषा के स्वरूप संबंधी कवि की अपनी एक विशिष्ट धारणा है जो उनकी साहि--त्यिक चेतना को विशिष्ट रूप में प्रकट करती है ।

दिनकर काव्य में अलंकार के महत्त्व को मानते हुए कहते हैं -- '' मैं अलंकार के महत्त्व को भूल नहीं सकता , किसी भी प्रकार का अनादर नहीं कर सकता , क्योंकि अलंकारों ने काव्य कौशल के बहुत से ऐसे भेद खोले हैं, जो अन्यथा अविश्लिष्ट रह जाते । ''[१८]

दिनकर की काव्यभाषा :

दिनकर की काव्यभाषा का अध्ययन करने पर अनेक विशेषताएँ स्पष्ट होती

---

१८. मिट्टी की ओर - दिनकर, पृ.११५ ।

हैं । साथ में कुछ दोष भी दिखाई देते हैं । दिनकर ने अपने शब्द भंडार को बढाया है । आधुनिकता के प्रवर्तक होते हुए भी उन्होंने प्राचीन शब्दों को अपने काव्य में स्थान दिया है । दिनकर के प्रबंध काव्य , मुक्तक और गीतों की रचना की । इनमें काव्यभाषा के विविध आयाम प्रकट होते हैं । उनकी भाषागत विशेषता इस प्रकार है । उसमें भावानुरूपता , प्रसाद गुण, सफल शब्द-चयन, विशेषणों का उपयुक्त प्रयोग , सफल रूप में पाया जाता है ।

दिनकर के संपूर्ण साहित्य में शब्दों और भावों में उचित मेल दिखाई देता है । भावानुकूलता के लिए उन्होंने साधारण से साधारण शब्दों का भी प्रयोग किया है । तत्सम शब्दों का सफल प्रयोग ' उर्वशी ' में मिलता है । तत्सम शब्दों के साथ तद्भव और स्थानीय शब्दों का प्रयोग करने में कवि पूर्ण पारंगत हैं । इसके अतिरिक्त कवि को विदेशी शब्दों से तिरस्कार नहीं है । नीलकुसुम, नए सुभाषित, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा आदि काव्यों में अंग्रेजी के शब्द और मुहावरों का प्रभाव दिखाई देता है । दिनकर का ध्यान शब्दों पर केंद्रित न होकर भावों पर केंद्रित रहा है । वे शब्दों का चयन उसके रूप से नहीं, सामर्थ्य के आधार पर करते हैं । दिनकर जी के साहित्य में लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग अनुभूति की प्रखरता प्रदान करने के लिए हुआ है । परिणामत: वे भाव के अंग बनकर विषयवस्तु और अभिव्यंजना की मध्यस्तता करने लगे हैं । मुहावरों के प्रयोग द्वारा दिनकर ने अपनी काव्य भाषा को आकर्षक बनाया है ।

दिनकर का काव्य, भावपक्ष से कलापक्ष की ओर गया है । अत: उसमें विचार अधिक उठते हैं, चित्र निर्माण अथवा बिंबों के आधार कम हैं । कुरुक्षेत्र इस दृष्टि से सफल रचना नहीं है । उर्वशी में सफल चित्र व्यंजना है । उसके बिंब का प्रयोग हुंकार की तीन कविताएं दिल्ली, विपथगा , हिमालय में किया है । इसमें उर्वशी, नीलकुसुम, कोयला और कवित्व आदि की प्रतीक योजना सशक्त और

सहज रूप में प्रकट हुई है ।

दिनकर ने अपने अलंकारों की सामग्री विभिन्न क्षेत्रों से चुनी है । उनकी दृष्टि सदा अनुकूल उपमानों को जुटाने की ओर रही है । उनके अधिकांश अलंकार कविता के अंतरंग सहयोगी बनकर उपस्थित हुए हैं । दिनकर ने अपने काव्य में कुछ नए उपमानों की भी संयोजना की है । अलंकारों के प्रयोग में दिनकर ने अपनी सूक्ष्म और वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है । वे अलंकारों का प्रयोग काव्यगत गांभीर्य, बारीकी, संक्षिप्तता और सौंदय सृष्टि के लिए करते हैं ।

निष्कर्ष :

दिनकर एक प्रगतिवादी कवि होने के नाते उनकी साहित्यक चेतना समाज के यथार्थ चित्रण में प्रकट होती है । भावुक कल्पना लोक में विहार करने के बजाय उनकी साहित्यिक चेतना धरती के यथार्थ को प्रकट करती है ।

दिनकर ने अपने साहित्य में आदर्श के नीतिमय धरातल को छोडा नहीं। उन्होंने समय की पुकार को अवश्य सुना पर उसके प्रवाह में बह नहीं गए । केवल दो - चार उत्तेजक बातें कहकर कवि शांत नहीं हुए । उन्होंने मानव को अंतस में पैठकर शाश्वत समस्याओं की खोज ली । उन्होंने अपने साहित्य में युगीन समस्याओं को उठाना उचित समझा । विषय वस्तु के प्रति दिनकर का दृष्टि-कोण सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से प्रकट हुआ है है ।

साहित्यकार होने के कारण दिनकर कलापक्ष में नवीनता लाए हैं । काव्य -रूढियों को तोडकर भावों के अनुरूप शैली का प्रयोग करके दिनकर ने नवीनता का

प्रतिपादन किया है । पुराने छंद, अलंकार आदि का त्याग कर उनकी साहित्यिक चेतना कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करती है।

अनल कवि की विरुदावली से विभूषित श्री दिनकर का साहित्यिक जीवन अत्यंत सफल रहा है । वे हिंदी के प्रतिभासंपन्न और भाग्यशाली कवि हैं । दिनकर ने अपने काव्य को विविध विषयों एवं विचारधाराओं से भली भाँति सजाया और सँवारा है । विषय और कला की दृष्टि से विविधताओं का जितना सशक्त निर्वाह दिनकर के काव्य में उपलब्ध है, उतना तद्युगीन कवियों की रचनाओं में दुर्लभ है । एक कलाकार की हैसियत से दिनकर स्पष्ट और ईमानदार हैं । उन्होंने हुंकारमयी वाणी से साहित्यिक जगत को झकझोर दिया है ।

०